A Quarterly Newsletter of Maitree Jankalyan Samiti

मैत्री समूह

Chirping Sparrow

Year - 6, Issue - II, Jan to March 2010

इतने ऊंचे उठो कि जितना उठा गगन है।

देखो इस सारी दुनिया को एक दृष्टि से
सिंचित करो धरा, समता की भाव वृष्टि से
जाति देश की, धर्म वेश की
काले, गोरे, रागद्वेष की
ज्वालाओं से जलते जग में
इतने शीतल बहो कि जितना मलय पवन है।

चाह रहे हम इस धरती को स्वर्ग बनाना
अगर कहीं हो स्वर्ग उसे धरती पर लाना
सूरज, चांद, चांदनी, तारे
सच हैं प्रतिपल साथ हमारे
दो कुरुप को रुप सलोना
उतने सुन्दर बनो कि जितना आकर्षण है।

– द्वारका प्रसाद माहेश्वरी

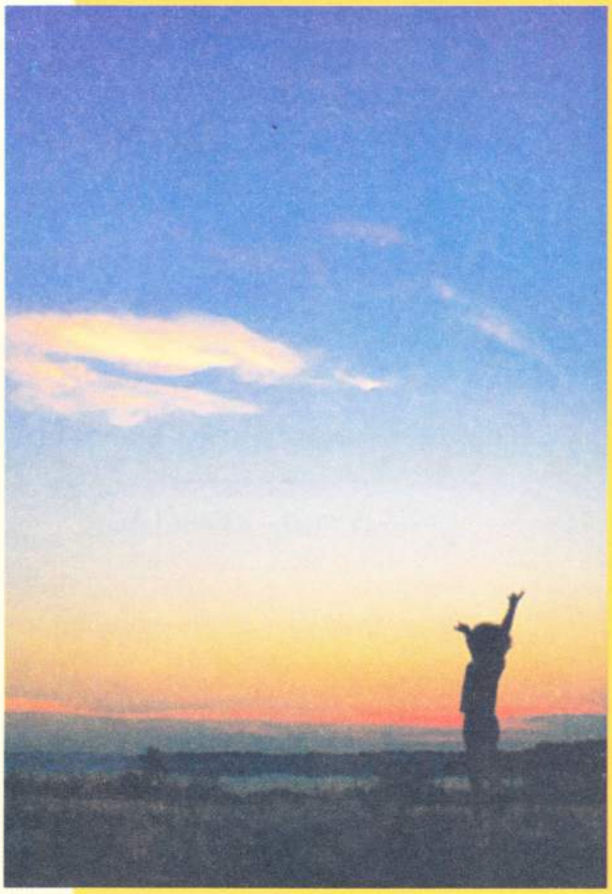

Pride of Society

Mr. Manish Modi

Manish Modi, 40, is the great-grandson of renowned scholar and popular Hindi poet Pandit Nathuram Premi, and a leading scholar of classical India. Been brought up in a profoundly literary and religious atmosphere and a graduate in law and commerce from Mumbai University, he has a natural flair for literature and Jainism. Today he is a respected figure among scholars of Jainism and Indiology both in India and abroad.

With many publications and original research papers under his belt, one is bound to get deceived by his young age. He is an honorary member of Prākrit Bhāratī Academy, Jaipur and a member of JAINPedia Advisory Group and Institute of Jainology, London. He was also the convener of the famous "National Seminar on the Contribution of Non-Violence to the World" and is the managing committee member of Akhil Bhāratīya Sanskrit Prakashak Sangh.

Add to it the fact that he is an advisory editor to international publications like –Jain study Circular, New York and Leicester Jain Temple Commemoration, London. Having already edited more than a dozen books in Hindi or English, lately he has also started translation of Prakrit works to English. He is a writer and moderator on half a dozen discussion groups ranging from – Poetry in Hindi and Urdu to Jainism and from Book reviews to Indiology. He teaches courses in Indiology and Jainism both as a regular and a visiting faculty. He also delivers a lecture series for the students of advanced certificate courses in Jainism.

He also runs the 'Hindi Granth Karyalya', a publishing house famous for bringing out real quality books at low prices. He is a strict follower of moral values and an avid learner and scholar of Jainism and Indiology. He currently lives in Mumbai and spends his time on teaching, writing and research.

manishymodi@gmail.com

Young Achiver

Prerak Shah, Ahemdabad
YJA – 2002, 2004, 2008
B.E. (Mechanical), A.I.E. 2008
Officer, GSPC Pipavav Power Co. Ltd.
Several papers in Metallurgical Journal

Ankit Jain, Gwalior
YJA 2004
B.Tech.(Materials & Metallurgical), IIT Kanpur 2008
XII - 87%, X - 87%, IIT JEE – 1920, AIEEE- 440
Senior Wireline Engineer, Schlumberger, USA
EGIDE Scholarship, French Govt.

Chirping Sparrow
Year - 6, Issue - II

Chirping Sparrow is published quarterly by the
Maitree Jankalyan Samiti
Post Box No. 16, Vidisha, Madhya Pradesh - 464001
E-mail : maitreesamooh@hotmail.com,
Website : www.maitreesamooh.com Mobile: 94254-24984
It is circulated to all Young Jaina Awardees and friends of
Maitree Jankalyan Samiti.

जिनपूजा

पिछले अंक से निरन्तर..........

अब नैवेद्य अर्पित करने का क्रम आता है। निर्दोष भोज्य–सामग्री को नैवेद्य कहते हैं। इसे चरू भी कहते हैं। भूख–प्यास की वेदना को शान्त करने और आयु–प्राण को संबल देने में भोज्य सामग्री मदद देती है। जीव जब तक किसी भी भव की आयु धारण करता रहेगा तब तक भूख–प्यास आदि की वेदना से मुक्त नहीं हो सकता। अतः हम नैवेद्य अर्पित करते समय आयु–कर्म से मुक्त होने और भूख (क्षुधा) की वेदना मिटाने की भावना व्यक्त करते हैं। जैसे आयुकर्म के अभाव में आत्मा में अवगाहनत्व गुण प्रकट हो जाता है उसी प्रकार आहार–दान के निमित्त से प्राणिमात्र को अपने हृदय में स्थान देते हुए सभी के हृदय में अपने लिए स्थान प्राप्त किया जा सकता है। नैवेद्य अर्पित करते समय यथाशक्ति आहार–दान देकर आहार–सामग्री के प्रति अपनी आसक्ति घटाने, सभी जीवों का उपकार करने और आत्म तृप्ति पाने का सद्प्रयास करते रहने का व्यावहारिक संदेश भी लेना चाहिए।

अब दीप अर्पित करने का अवसर आता है। दीपक की ज्योति अंधकार को नष्ट करने वाली और सभी पदार्थों को प्रकाशित करने वाली है। इस ज्योति से भी सूक्ष्म केवलज्ञान रूपी परम ज्योति है जो सभी आत्माओं में व्याप्त अज्ञान के सघन अंधकार को हटाने वाली और शरीरातीत शुद्ध आत्म–स्वरूप का दर्शन कराने वाली है। अतः दीप–समर्पित करते हुए हम नामकर्म के अभाव में प्रकट होने वाली शरीरातीत विशुद्ध परमात्मज्योति को प्राप्त करने की मंगल–भावना व्यक्त करें। दीपक से एक व्यावहारिक संदेश यह भी लिया जा सकता है कि हम जहां भी रहें वहां अपने आसपास के परिवेश को सदाचार और सद्ज्ञान से आलोकित करते रहें। हमारे शरीर रूपी दीपक में सभी जीवों के प्रति स्नेह (तेल) सदा बना रहे और श्रद्धा–भक्ति व विवेक की बाती निरन्तर जलती रहे।

अब धूप अर्पित करने का क्रम आता है। धूप की यह विशेषता है कि वह स्वयं जलती जाती है लेकिन आसपास के समूचे वातावरण में फैलकर उसे सुगंधित बना देती हैं। धूप की खुशबू गरीब–अमीर, छोटे–बड़े आदि का भेदभाव नहीं करती और समान–भाव से सभी को लाभान्वित करती हैं। अतः धूप अर्पित करते हुए हम गोत्रकर्म के अभाव में प्रकट होने वाले आत्मा के स्वाभाविक अगुरूलघुत्व गुण को प्राप्त करने की भावना व्यक्त करें। धूप से एक व्यावहारिक संदेश यह भी लेने का प्रयत्न करें कि अपने जीवन में किसी के प्रति भेदभाव नहीं रखेंगे और सभी से मैत्रीपूर्ण व्यवहार करेंगे। अब फल समर्पित करने का क्रम आता है। हम संसार में जो भी भला–बुरा कार्य करते हैं तो उसका भला–बुरा फल भी हम पाते हैं। फल की प्राप्ति में हमारे संचित कर्म या संस्कार बाधक भी बनते हैं। ऐसी स्थिति में हम फल समर्पित करते हुए यह भावना रखें कि हमारे बाधक कर्मों (अन्तराय कर्म) का अभाव हो ताकि हम अपनी अनंत सामर्थ्य या अनंतबल को प्रकट करके मनुष्य जीवन के श्रेष्ठतम फल–मोक्षपद को पा सकें। फल चढ़ाते समय यह व्यावहारिक संदेश भी मिलता है कि हम जो भी करें अच्छा करें और अच्छी भावना से करें। शुभ–अशुभ कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय में साम्य–भाव रखें।

अंत में अर्घ्य समर्पित करने का अवसर आता है। अर्घ्य वास्तव में अष्टद्रव्य से पृथक नहीं है, वह अष्ट द्रव्यों का समन्वित रूप है। अर्घ्य के मायने है–मूल्यवान। अष्ट द्रव्यों को जब हम शुभ भावों के रस में मिलाकर अर्घ्य बनाते हैं तब वह सचमुच मूल्यवान हो जाता है। अर्घ्य समर्पित करते हुए हम यह भावना व्यक्त करते हैं कि हमें आत्मा की परम विशुद्ध और अमूल्य परमात्म अवस्था प्राप्त हो। अर्घ्य चढ़ाते समय एक व्यावहारिक संदेश यह भी ले सकते हैं कि मनुष्य जीवन सबसे मूल्यवान है अतः हमें इसका सदुपयोग करना चाहिए। स्वयं आत्मनिर्भर रहकर सबकी मदद के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

वर्तमान समय में पूजा की प्रक्रिया, पूजा के दौरान समर्पित की जाने वाली सचित्त–अचित्त पूजन–सामग्री, अभिषेक या प्रक्षाल की क्रिया, आह्वान, स्थापन, विसर्जन या समापन आदि क्रियाओं में विविधता देखने में आती है। इस विविधता को देखकर हम विचलित न हों। अहिंसा और वीतरागता को प्रमुखता देते हुए कषायों की मंदता, कर्मों की निर्जरा और रत्नत्रय की प्राप्ति की भावना से प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अभिषेक और पूजा करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें और अपना जीवन सफल बनाएं।

भगवान महावीर का बुनियादी चिंतन

महावीर के लिए अहिंसा सबसे बड़ा जीवनमूल्य है। वे अहिंसा को धर्म की आँख से नहीं बल्कि धर्म को अहिंसा की आँख से देखते हैं। महावीर के जीवन मे कोई हड़बड़ी नहीं है। उनसे जुड़ी घटनाएं प्रमाणित करती हैं कि उनका जीवन भागता हुआ नहीं, ठहरकर सोचता हुआ, शांत, तटस्थ और चीज़ों को बिना किसी पूर्वाग्रह के समझने के लिए प्रस्तुत होता हुआ है। ग्रहण करने की भावुक उतावली भी नहीं और छूट जाने का बोझिल पश्चाताप भी नहीं। जीवन में कोई नाटकीयता नहीं, कोई तमाशा नहीं। एक मैदानी नदी की तरह शांत बहाव सा जीवन। अपने पर्यावरण– अपने जल, जंगल, जमीन आदि को बचाए रखने के लिए चिंता करती हुई आज की दुनिया को यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि महावीर इन सभी को निर्जीव नहीं सजीव मानते हैं। जैन ग्रंथों में इन्हें पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय एकेंद्रिय जीव कहा गया है। स्थावर जीवों को कष्ट देना, उनका अपव्यय करना, उनका गैर जरूरी उपयोग करना भी महावीर की दृष्टि में हिंसा हैं। धीरे–धीरे अब हमारे वैज्ञानिक प्रयोग भी यह दर्शाने लगे हैं कि इनमें प्राणों की स्थिति स्वीकार करने के मामले में महावीर की दृष्टि गलत नही हैं। हिंसा चाहे किसी भी प्रकार की हो, उसके स्तर और पाप–कारकता का निर्धारण उसमें प्रवृत्त व्यक्ति की भावना और न्यूनतम / अपरिहार्य / अनिवार्य की सीमा के आधार पर होता है। भौतिक रूप में हिंसा भले ही घटित न हो पर यदि मन में उसका भाव आया है तो उससे भी कर्मबंध होता है, पाप लगता है। वह भावहिंसा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, घृणा, अहंकार आदि हिंसा के बीज हैं। हिंसा से ये ऐसे जुड़े हुए हैं कि इन्हें ही हिंसा कहा जा सकता है। अहिंसा तो एक करूणार्द्र सक्रिय रचनात्मकता है। भाव हिंसा पहले हमारे ही भीतर घटित होती है। इसलिए दूसरे की हिंसा करने से पहले हम खुद अपनी हिंसा, खुद अपना ही आत्महनन कर चुकते हैं। हमारी आत्मा कर्मों के आस्रव का शिकार हो चुकती है। जिस बरतन में आग प्रज्जवलित होती है वही तो पहले ज्यादा तपता है। भौतिक रूप से घटित होने वाली हिंसा द्रव्यहिंसा है। अगर वह भावहिंसा के बिना हो तो एक दुर्घटना या यांत्रिकता है। फिर भी उसका कुछ न कुछ प्रभाव तो कर्ता की आत्मा पर पड़ता ही है। जहाँ भाव और द्रव्य दोनों ही हिंसाएं हो वहाँ ज्यादा बड़े पाप का बंध होना स्वाभाविक है। आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा अगर न्यूनतम और जरूरी की लक्ष्मणरेखा को पार करके गैर जरूरी के क्षेत्र में प्रवेश कर जाये तो वह भी पाप से जोड़ती है।

वस्तु स्वरूप की सही समझ के कारण महावीर की दृष्टि और चिंतन में 'ही' की दृढ़ता ही नहीं 'भी' की नमनीयता भी समाई हुई है। वे चाहते हैं, दूसरों के लिए हाशिया छोड़ा जाए। दूसरों के लिए हाशिया छोड़ना कायरता नहीं, ऊँचे दर्जे की वीरता है। देश की रक्षा के लिए सम्यक् ज्ञानपूर्वक शत्रु का वध भी हिंसा नहीं है। हिंसा तो तब है जब उन्माद और अहंकार के वशीभूत होकर किसी के सुख या प्राणों का हरण किया जाए। महावीर राग को हिंसा का जनक मानते हैं। राग, चाहे वह देहराग हो या भूमि का, या सत्ता–सम्पत्ति का, राग हिंसा की ओर ही ले जाता है। ऐसे तमाम रागों के वशीभूत हिंसक हो उठे पाकिस्तान ने 1947 में कश्मीर पर कबायली आक्रमण किया। श्रीनगर को भी खतरा बढ़ने लगा तो महाराजा हरिसिंह ने राज्य का भारत में विलय कर दिया। अब अपने देश को बचाने के लिए भारतीय सेना के अविलंब वहाँ भेजे जाने की जरूरत थी। डर था कि कहीं गाँधीजी सेना भेजने का विरोध न करें। लेकिन माहत्मा गाँधी को महावीर की दृष्टि की एकदम सही पकड़ थी। उन्होने तमाम शंकाओं को निर्मूल सिद्ध करते हुए भारतीय सैनिकों को ले जा रहे हवाई जहाजों कों शांति का दूत कहा। जीवन को बनाए रखने के लिए थोड़ी बहुत हिंसा तो होगी ही। चलने फिरने, नहाने– धोने, उठने–बैठने खाना बनाने जैसे कामों में जो हिंसा होती है महावीर उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं। नौकरी, खेती, उद्योग, व्यापार आदि जीविकोपार्जन में जो हिंसा होती वह उद्योगी हिंसा है। अपने सम्मान, संपत्ति और देश की रक्षा करने में आतंक और आक्रमण के विरूद्ध उठ खड़े होने में होने वाली हिंसा विरोधी / प्रतिरोधी हिंसा है। आज की दुनिया में यह आए दिन की जरूरत बनती जा रही है। ये हिंसाएं हमारी मजबूरी हों, हमारे राग आदि की, हमारे अहंकार की उपज नहीं। ऐसे में इनमें हमारी दृष्टि न्यूनतम हिंसा की रहनी चाहिए।

युद्ध थोपने, माँसाहार करने / कराने, सांप्रदायिक विद्वेष फैलाने, शिकार करने, धार्मिक अनुष्ठानों मे बलि चढ़ाने, दूसरों को गुलाम बनाने, गैर की जमीन हड़पने, गर्भपात करने / कराने, सत्ता और बाज़ार पर काबिज़ होने आदि में होने वाली हिंसा से पूरी तरह बचना संभव है। यह आत्मा का पतन करती है और पाप है। महावीर इसका कठोरतापूर्वक निषेध करते हैं।

– जयकुमार जलज

आपके प्रश्न

Q. जब कभी मैं बस या रेल से यात्रा करती हूँ, तो कई भिखारी दिखते हैं, उन्हे देख कर मैं दुखी हो जाती हूँ। कई बार सोचती हूँ कि उनकी मदद करूं पर फिर लगता है कि वो हमारे दान का सदुपयोग नहीं करेगा तो ? फिर सोचती हूँ कि मैं सही सोच रहीं हूँ या नही ?

– रूचि जैन, बैंगलोर

A. **दान दो प्रकार का होता है–** लौकिक और पारलौकिक। पारलौकिक दान जिससे कि कर्मो की निर्जरा होती है, वह तो हमें करना ही चाहिए। साथ ही लौकिक दान जिससे कि सिर्फ पुण्य का अर्जन होता है, वो भी श्रावक को करना चाहिए। सकलदत्ति , समदत्ति , दयादत्ति आदि लौकिक दान के भेद हैं। दयादत्ति को करूणादान भी कहते हैं। इस करूणादान में पात्र–अपात्र का विवेक करने की जरूरत नहीं है। जिसके प्रति भी करूणा आ गई, मन में दया का भाव आ गया उसे दे दिया। उसके Background और वो उस वस्तु का क्या उपयोग कर रहा है इसकी ज्यादा जाँच–पड़ताल की कोई आवश्यकता नहीं है। ये बात अलग है कि अगर हमें मालूम पड़ जाये कि वो हमारी चीज का सदुपयोग नहीं करता है, तो फिर हमारे मन में दया के भाव वैसे ही नहीं आयेंगे। पर अगर दया के भाव आ जायें तो दे देना चाहिए। विवेकानन्द के पिता विश्वनाथ बड़े दयालु थे। उनके दरवाजे पर एक व्यक्ति रोज आकर भोजन माँगा करता था और वे उसे वहीं बाहर चबूतरे पर बैठाकर भोजन करा देते थे।

नरेन्द्र (विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्र था) ने कहा कि ये जो आप करते हैं वो ठीक नहीं है। माँ बता रही थीं कि वो शराबी है और आप उसे रोज बड़े प्रेम से भोजन कराते हैं। नरेन्द्र के पिता ने कहा–तुम अभी छोटे हो, जीवन का अभी तुम्हें अनुभव नहीं है। पता नहीं किस मजबूरी में उसने यह मिथ्या काम शुरू किया होगा ? उसकी वो जाने, मेरे दरवाजे से कोई भूखा लौट जाये, यह मुझ से नहीं होगा और सुनो कल के दिन अगर तुम भी शराब पीने लगे तो भी मेरी सम्पत्ति के अधिकारी तुम ही होगे। बात आई गई हो गई। आठ–दस दिन बाद देखा तो वही शराबी आदमी बैठक में बाऊजी के चरणों में बैठा है। नरेन्द्र को थोडा गुस्सा आया कि आज तो हद हो गई ऐसा वाहियात आदमी आज बैठक में आ पहुँचा। पर गुस्से को रोकते हुए दरवाजे के पीछे छिपकर उनकी बातें सुनने लगे। शराबी ने कहा, ''मालिक जो कहो वो करने को तैयार हूँ। मेरी इस बुरी आदत के बावजूद एक आप ही हैं जिसने मुझ पर करूणा की, जिसने मुझ पर प्रेम किया। मेरा कोई नहीं है सिवाय आपके। मैं तो जिन्दगी भर आपका ऋणी रहूँगा। आप एक बार कह दें कि इस बुरी आदत को छोड़ दो तो आपकी सौगंध लेकर कहता हूँ जिन्दगी भर छुऊँगा भी नही। आपकी करूणा, आपका प्रेम मुझे अच्छा आदमी बनने की प्रेरणा देती है।'' और वाकई उस आदमी ने शराब छोड दी।

मेरे कहने का आशय आपकी समझ में आ ही गया होगा। हम किसी को दे ही क्या सकते हैं ? दो जून का भोजन या कि कोई अन्य वस्तु, ये कोई बड़ी बात नहीं है। आपने उसे जो प्रेम दिया, करूणा की वो बड़ी बात है और वाकई देखें तो प्रेम या करूणा के बिना दान देना व्यर्थ है। दीन दुखी आदि को प्रेम और करूणा पूर्वक दान देना चाहिये। दूसरी तरफ पात्र को जो दान दिया जाता है (पारलौकिक दान) वह श्रद्धा पूर्वक किया जाता है। पात्र को दिया गया दान पारलौकिक दान है जिससे कर्मों की निर्जरा होती है। करूणा/प्रेमपूर्वक जो दान दिया जाता है उससे पुण्य का बन्ध होता है, कर्मों की निर्जरा हो ऐसा जरूरी नहीं। नेत्रदान, रक्तदान आदि भी करूणादान में ही आते हैं और सभी श्रावकों को करूणा दान करते रहना चाहिए। आचार्यों ने करूणा दान का निषेध कहीं नहीं किया है। हम स्वयं ही तर्क–वितर्क और बौद्धिक होते हुए इन चीजों को करना भूल गये हैं। हुआ यूँ कि हमें जितना हार्दिक होना चाहिए था हम उतना बौद्धिक हो गये हैं।

आपके प्रश्न

जैनेन्द कुमार ने एक कहानी लिखी है– ''अपना–अपना भाग्य''। वे लिखते हैं कि वे, सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन (अज्ञेय), अक्षय कुमार और एक अन्य लेखक ये चार लोग प्रतिदिन सुबह पार्क में घूमने जाया करते थे। एक दिन पार्क में इनके पास एक 10–12 वर्ष का बालक भोजन मांगता हुआ आया और बोला–'बाबूजी '1' रूपया दे दो या कि भोजन दिला दो। तीन दिन से भूखा हूँ। आप लोग पढे–लिखे अच्छे लोग लग रहे हैं। थोड़ी कृपा करें। इन लोगों ने थोड़ा मजा करने के लिए उसे 100 रूपये का नोट दे दिया। उसने कहा कि मालिक कहीं जाऊँगा तो लोग कहेंगे चुरा कर लाया हूँ। आप ही तुड़ा कर दे दीजिए। बात सन् 36 की है और तब 100 रूपये बहुत बडी रकम होती थी। इन्हें तो टालना था सो टाल दिया। बालक चला गया। घूमफिर कर ये लोग भी चले गये। अगले दिन फिर सुबह ये लोग पार्क में पहुँचे तो माली ने कहा कि बाबू जी आज उस तरफ वाली बैंच पर न जायें। बहुत पूछने पर माली ने कहा कि आप इतना जिद करते हैं तो खुद ही जाकर देख लें। चहल कदमी करते हुये ये लोग वहाँ पहुँचे तो देखा कि वहाँ बैंच के पास वही 10–12 साल का लड़का मृत पड़ा है। भूख से उसके प्राण निकल चुके थे। मन ही मन अपराध बोध हुआ कि अगर 1 रूपया दे दिया होता तो शायद यह बच गया होता। पर फिर ''अपना–अपना भाग्य'' ऐसा कह कर खुद को दिलासा देकर चले गये।

उन्होंने व्यंग्य करते हुए लिखा है कि हम भी अक्सर इसी तरह बौद्धिक होते हुए तर्क देकर अपनी संवेदनाओं को नष्ट कर देते हैं। और दान/ करूणा / दया के अवसरों से चूक जाते हैं। भैया दो रोटी के लिए ज्यादा पात्र–अपात्र का विचार नहीं करना। दो रोटी ही तो दे रहे है, उसके लिए सात पीढियों का लेखा जोखा लेने का क्या मतलब है ? लौकिक दान में जो दयादत्ति या कि करूणा दान है उसमें ज्यादा विचार करने की जरूरत नहीं है। इससे हमारा उपकार तो होगा ही और उसका भी, और अगर वो हमारी वस्तु से अपना अपकार भी करता है तो ये उसकी जिम्मेदारी है। उसमें हमारा कोई हर्जा नहीं। हमने तो सामने वाले के उपकार के लिए ही दिया है। ऐसी भावना रखकर प्रेम और दयापूर्वक करूणा दान करना चाहिए।

जैनेन्द्र वर्णी ने लिखा – मुझे नहीं मालूम कौन योग्य पात्र है। लेकिन 100 लोगों में कोई एक पात्र है और मुझे उसे देना है। लेकिन मैं उसे कैसे पहचानूँ कि कौन योग्य है और कौन अयोग्य ? सो मैं तो 100 को ही दे देता हूँ। 99 गलत के पास पहुँचा होगा पर एक सही के पास भी पहुँचा है और वो मेरे लिए कहीं अधिक लाभप्रद है। मुझे उससे चूकना नहीं चाहिए। होता यूँ है कि हम तर्क वितर्क में सब से चूक जाते हैं । जब भी हमारे मन में दया आती है तब हमारी बुद्धि कहती है, अरे ये सब तो बेईमान हैं, माँगने वाले। और ऐसा ही हो रहा है आज, और हमारा मन बुझ जाता है। हमें जो बात सीखनी है वो ये कि जब दया या करूणा आ जाये तो फौरन दान दे देना चाहिए।

इन्होनें भी इसके बारे में जानकारी चाही थी–

उज्जवल जैन; मुम्बई, आकाश जैन; बंगलूरु, देवांग शाह; जयपुर, अनन्त जैन; नोएडा, निकुंज जैन; बीना, दीपक जैन; बंगलूरु, प्रतीक्षा जैन; बंगलूरु, श्रेया जैन, प्रेरक शाह; अमरेली, विवेक जैन; लखनऊ, सोनल जैन; मुम्बई

Q. यदि कोई जैनी जैन धर्म के अनुसार पूरे नियम नहीं पाल रहा तो क्या वह नरक में जाएगा ?

–प्रियंक मंडल, गुना

A. गति–बंध भाव आधारित प्रक्रिया है, भावों को संभालने में कषायों को मंद करने में नियम आदि निमित्त बनते हैं नियम पालन करते हुए हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि भावों में कितनी निर्मलता आदि है, भाव निर्मल होंगे तो उच्च गति ही मिलेगी ।

आपकी भी कोई शंका या प्रश्न हो तो हमें लिख भेजें। मुनिश्री द्वारा इसका उत्तर दिया जाएगा।
पता – मैत्री समूह, पोस्ट बॉक्स नम्बर 16, विदिशा (मध्यप्रदेश) पिनकोड – 464 001

"अनहोना बेटा"

वीरेन्द्र जैन

महारानी त्रिशला अपने कक्ष में, एक पूर्णाकार शीशे के सामने खड़ीं, फूलों से अपने केशों का सिंगार कर रही हैं, तभी किसी ने सहसा टोका :

"अरे माँ, तुम यह क्या कर रही हो ?"

"देख न, जूड़े में फूल टांक रही हूँ, सुन्दर लगते हैं ना ?"

"नहीं माँ, बिल्कुल नहीं, फूल तो डाल पर ही सुन्दर लगते हैं, जूडे पर नहीं।"

"क्यों बेटा ?"

" हर चीज अपनी जगह पर सुन्दर लगती है, माँ वहां से उसे हटा दो तो, फिर..... "

"तो फिर क्या ?"

"वह मर जाती है, तुम्हारे जूड़े में मरे हुए फूल लगे हैं, इनकी मुस्कान तुमने छीन ली, माँ। ये ढेर–ढेर फूल जो तुम्हारी शैया में, स्तवकों में तोड़ कर सजा दिए गए हैं न वे सब मुझे मरे हुए लगते हैं।"

"इतने सुन्दर लग रहे हैं, इतनी सुगन्ध भरी है कमरे में, फिर फूल मरे हुए कैसे ?"

"पता नहीं, मुझे ऐसा क्यों लगता है, ये फूल खुश नहीं लगते, नाराज हो गए हैं, माँ ये डाल पर ही प्रसन्न थे।"

"तू तो कहता है, मर गए हैं।"

"हाँ, इनमें कुछ मर गए हैं, माँ, जो मुझे दिखता है, हाँ–हाँ, याद आया, उस दिन उद्यान–क्रीड़ा में, मालिन वनमाला को एक चम्पक फूल तोड़ते हुए मैंने देखा था। अरे माँ, देखो न, तब ऐसी सिसकारी फूटी थी, डाल पर नन्हा फूल रो दिया था, और उसकी डाली भी। हमको बहुत दुःख हुआ था उससे।"

"तेरी तो सभी बातें अनहोनी है, मानू तू तो चलता भी ऐसे है कि कहीं धरती को दुख न हो जाए। लकड़ी, पत्थर, धातु जैसी जड़ चीजों को भी ऐसे छूता है, जैसे वे जीवित हों, तू तो खंभे से भी गाल सटा कर उसे प्यार करता है। तेरे खेल समझ में नहीं आते।"

"क्या करें माँ, हमको सब कुछ जीवित लगता है, सब ओर प्राण ही प्राण लगता है, हमारे प्राण को ऐसा ही लगता है हम क्या करें ?"

"चेतन में तो ठीक है, पर तू तो जड़ पदार्थो को भी ऐसे छूता है, जैसे सहला रहा हो।"

"अरे माँ, चेतन कहां है, और कहां नहीं है, यह कौन बताये, हमको तो सब जीवित लगता है। सब सुन्दर .... देखो तुमने फूलों को तुड़वाकर, सब असुन्दर कर दिया, मर गए बेचारे... ।"

"तो हम सिंगार काहे से करें, लालू ?"

"ओ ....तो क्या फूलों के प्राण लोगी, उसके लिए ? तुम अपना सिंगार अपने से करो। फूल अपने से करें, तुम उनकी सुन्दरता देखो, वे तुम्हारी देखें, तुमको फूल की सुन्दरता से मतलब थोड़े है, तुम्हें तो अपनी सुन्दरता की पड़ी है। सबको अपनी–अपनी पड़ी है। मरे फूल से सिंगार करके, तुम मुझे सुन्दर नहीं लगतीं माँ !"

"अच्छा बाबा, चुप कर, तेरी बातें सारी दुनिया से निराली हैं, तेरे कहने से सब चलें, तो दुनिया और की और हो जाए।"

"सो तो होगी ही तुम्हारी यह दुनिया, हमें अच्छी नहीं लगती सब एक–दूसरे को मार कर जीते हैं यहाँ।"

"तो फिर तू क्या करेगा ?"

"हम तुम्हारी इस दुनिया को उलट देंगे अपने मन की बना लेंगे।"

"बना लिए तुमने कहा और हो लिया !"

"अरे हाँ हो लिया, माँ, तुमको हम करके बतायेंगे।" महारानी सिंगार करना भूल गई, अन्यमनस्क हो, कमरे में सजे सारे फूलों को डूबी–डूबी आंखों से देखने लगी।

" वर्द्धमान .... ।"

बालक वहां से जा चुका था।

–"अनुत्तर योगी" से साभार

कृतज्ञता

एक सज्जन थे, भाषा एवं लेखनी के बड़े धनी थे, किसी भी भाव या प्रसंग को शब्दों में कैसे पिरोना यह उन्हें बहुत अच्छी तरह आता था, आसपास के शहरों में उनकी लेखन कला की काफी प्रसिद्धि भी थी, परन्तु आर्थिक रूप से कुछ कमजोर थे।

काफी मेहनत से उन्होंने एक किताब लिखी, अपने मित्रों और अन्य बुद्धिजीवियों को भी पढाई ,सभी ने किताब की बहुत प्रशंसा की, परन्तु इन सज्जन की मुश्किल यह थी कि पुस्तक छपवाने के लिए किसी प्रकाशक को भेजें भी तो कैसे, जेब में तो टिकट खरीदने के भी पैसे नहीं थे। बड़ी सोच में थे।

तभी उनका एक मित्र आया और बातों–बातों में उसने इनकी मुश्किल ताड़ ली , बात करके जब जाने लगे तो बिना कुछ कहे इनकी जेब में पांच रूपये का एक नोट रखा और जाने लगे, इन्होनें कहा–यह क्या करते हैं ? तो वह मित्र बोला–देखिये मैं चाहता हूँ की आपकी किताब का आनंद और भी लोग उठाएं सो इन पैसों से यह प्रति किसी अच्छे प्रकाशक को भेज दीजिये जब पैसे आ जाये तो लौटा दीजियेगा। उस मित्र की ऐसी निःस्वार्थ सहायता से लेखक महोदय बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने तुरंत वह प्रति एक प्रकाशक को पोस्ट कर दी।

इनकी लेखनी तो कमाल की थी ही, प्रकाशक ने किताब छपवाने के लिए तुरंत हामी भर दी। किताब चली भी ऐसी की लेखक महोदय के दिन जल्द ही पलटे, अब उनकी आर्थिक परिस्थिति भी काफी सुधर गयी।

इसके बाद लेखक जी जब भी उन मित्र को मिलते तो प्रेम से मुस्कुराते और चुपचाप एक पांच रूपये का नोट उनकी जेब में रख देते,जब वो कुछ सवाल करते तो कृतज्ञता से कहते–आपका उधार लौटा रहा हूँ रख लीजिए। और अब तो यह हमेशा का क्रम बन गया। जब भी मिलते तो उनकी जेब में पांच रूपये का नोट रख ही देते। कुछ दिनो तक तो ठीक था मगर हर बार ! एक दिन चिढ़ते हूए वह मित्र बोले–मैंने तो आपको केवल पांच रूपये उधार दिए थे, आप हैं कि हर मुलाकात पर मुझे पांच रूपये लौटाते हैं यदि आप ऐसा ही करते रहे तो हम आगे से आपसे नहीं मिलेंगे। इस पर लेखकजी बोले–बात पांच रूपये लौटने की नहीं है बात है आपकी की गयी अमूल्य सहायता की। यदि आप उस दिन मुझे पांच रूपये नहीं देते तो आज मैं इतना बड़ा लेखक नहीं कहलाता। न ही मेरे पास किसी को देने के लिए पांच पैसे ही होते, यदि मैं आपको अपने जीवन के शेष दिनों तक हर दिन पांच रूपये भी लौटाता रहूँ तो भी आपकी सहायता का मूल्य नहीं चुका पाऊँगा और यह कहकर वे कृतज्ञता से अपने मित्र के गले लग गए।

Excellence

A German once visited a temple under construction where he saw a sculptor making an idol of God. Suddenly he noticed a similar idol lying nearby. Surprised, he asked the sculptor, "Do you need two statues of the same idol?" "No," said the sculptor without looking up, "We need only one, but the first one got damaged at the last stage." The gentleman examined the idol and found no apparent damage. "Where is the damage?" he asked. "There is a scratch on the nose of the idol." said the sculptor, still busy with his work. "Where are you going to install the idol?" The sculptor replied that it would be installed on a pillar twenty feet high. "If the idol is that far, who is going to know that there is a scratch on the nose?" the gentleman asked. The sculptor stopped his work, looked up at the gentleman, smiled and said, "I will know it."

The desire to excel is exclusive of the fact whether someone else appreciates it or not. "Excellence" is a drive from inside, not outside. Excellence is not for someone else to notice but for your own satisfaction and efficiency.

Compassion

Feeling of compassion (Karunä) is what we should feel upon witnessing the miseries of all living beings. When we see animals and people suffering from pain and misery we should try to help them in whatever way we can.

We can help them in many different ways. We should give food to those who are hungry, money for their basic necessities, heal their mental anguish with soft calming words and give medicine to heal their physical sufferings.

We can help others by being compassionate. The greatest form of compassion reveals itself when one is willing to help all living beings irrespective of who they are and without any reservation. If we lack compassion we indulge in various acts that lead to bad Karmas. When these bad Karmas mature we suffer from mental, physical and emotional ailments: disease, insult and cruelty.

The degree of compassion depends upon a person's progress on the path of spiritual development. We have several incidences where great people have sacrificed the most valued things in their lives to alleviate the sufferings and pain of the smallest living beings.

There is an incident from the life of Swami Dayanand Saraswati. One day he was walking from Banäras to Dädäpur. It was a rainy day and the roads were flooded. One bullock-cart loaded with grass was stuck in mud. With every effort made to pull the cart out it was sinking deeper and deeper. Swami's heart filled with compassion when he saw the sufferings of the bulls, he took hold of the cart, freed the bulls, and pulled the carts out of the mud. Compassion is to respect all forms of life including animals, birds, insects and nature. Respect and regard for all forms of life is possible only if we truly believe that all forms are equal.

Please keep a pot full of water for birds to protect them in hot summer.

वीतरागी से अनुराग

आचार्य महाराज संघ सहित विहार कर रहे थे। खुरई नगर में प्रवेश होने वाला था। अचानक एक गरीब सा दिखने वाला व्यक्ति साईकिल पर अपनी आजीविका का बोझ लिए समीप से निकला और थोड़ी दूर आगे जाकर ठहर गया। जैसे ही आचार्य महाराज उसके सामने से निकले, वह भाव–विवहल होकर उनके श्री चरणों में गिर पड़ा। गद्‌गद्‌ कंठ से बोला कि "भगवान राम की जय हो" आचार्य महाराज ने क्षण भर को उसे देखा और अत्यन्त करूणा से भरकर धर्मवृद्धि का आशीष दिया और आगे बढ़ गए। वह व्यक्ति हर्ष–विभोर होकर बहुत देर तक, आगे बढ़ते हुए आचार्य महाराज की वीतराग छवि को अपलक देखता रहा। इस घटना को सुनकर मुझे लगा कि वीतरागता के प्रति अनुराग हमें अनायास ही आत्म–आनंद देता है। उन क्षणों में उस व्यक्ति की आँखों में आचार्य महाराज की वीतराग छवि अत्यन्त मधुर और दिव्य रही होगी, जो हम सभी को आत्म–कल्याण का संदेश देती है। **खुरई 1988**

भगवान

भगवान
कितना बड़ा है?
मैंने,
एक बच्चे से पूछा,
उसने दोनो हाथ फैलाये
और जैसे
मुझे समझाया
कि इतना बड़ा।
तब सचमुच
मुझे भी लगा
कि जितना जिसके
जीवन में समा जाए
भगवान उतना ही बड़ा।

–मुनि क्षमासागर जी

God

**I asked a child,
'How big is God?'
The child smiled
and streched both
his arm wide.**

**The child wanted me to
learn the vastness of God**

**And then I knew
that God is only as big
as your own life's grasp.**

***Translated by -
Sunita Jain***

'मुक्ति' से साभार

Your Space

About a hundred years ago, a man looked at the morning newspaper and to his surprise and horror, saw his name in the obituary column. The newspaper had reported his death by mistake. His first response was shock. When he regained his composure, his next thought was to find out what people had said about him. The obituary read "Dynamite King Dies" and "He was the merchant of death". This man was the inventor of dynamite and when he read the words "merchant of death," he asked himself, "Is this how I am going to be remembered?" He decided this was not the way he wanted to be remembered. From that day onward, he started working towards peace. He, the dynamite king, was Alfred Nobel and he is remembered today for the great Nobel prizes. Now it is our decision, how we want ourselves to be remembered as.......?

Compiled by,
Ankita Jain, Ashoknagar

जिन्दगी

जिन्दगी,
तुम अनंत.......
अर्थों से भरे,
शब्दों से परे हो,
असीमित, विस्तृत,
सीमाओं से परे हो,
गहराइयों का समुन्दर हो,
रहस्यों का रहस्य हो,
तुम समझ से परे हो,
हर प्राणी जीता है तुम्हे,
पर नही जान पाया कभी,
तुम्हारे,
वास्तविक स्वरूप को....
यथार्थ को........
"जिन्दगी के सत्य को"
"जिन्दगी की सत्ता को"
"जिन्दगी के अर्थ को",
बस,
इतना ही जांना कि,
जिन्दगी तुम अनंत हो..........

–नितिन जैन, चिरगांव

ईश्वर को धन्यवाद दीजिए

एक बिल्डिंग की सीढ़ियों पर एक अंधा लड़का अपने पैरों के पास हैट रखकर बैठा था। उसके हाथ में साईन बोर्ड था, जिस पर लिखा था – "मैं अंधा हूँ, कृपया मेरी मदद करें।" इसके बावजूद उसकी हैट में चंद सिक्के ही पड़े थे। इसी बीच एक आदमी वहां से गुजरा, उसने लड़के के हैट में कुछ सिक्के डाले और उससे बोला कि मैं तुम्हार साईन बोर्ड बदल रहा हूँ। उसके जाने के बाद देखते ही देखते लड़के के हैट में ढेर सारे सिक्के आ गिरे। लोग अब बढ़–चढ़ कर उसे सिक्के दे रहे थे। दोपहर को वही शख्स फिर उसे देखने आया तो पैरों की आहट पहचान कर लड़के ने पूछा, "आप वही हैं न जिन्होंने मेरा साईन बोर्ड बदला था ? आपने उसमें क्या लिखा था ?"

अंधे लडके के इस प्रश्न पर वह व्यक्ति बोला, "मैंने उस पर सिर्फ सच ही लिखा था। बस मैंने अपने कहने का अंदाज कुछ शब्दों की मदद से बदल दिया था। मैंने उस पर लिखा था – "आज का दिन बहुत अच्छा है, लेकिन मैं उसे देख नहीं सकता।" क्या आपको भी लगता है कि पहले और दूसरे साईन बोर्ड में एक ही बात की गई थी ? बिल्कुल, दोनों ही बातें अन्य लोगों को उस अंधे लड़के के बारे में बता उसकी मदद को कह रहे थे, लेकिन पहले साईन बोर्ड में वही बात साधारण ढंग से कही गई थी, जबकि दूसरे में लोगों को यह समझाने की कोशिश की गई थी कि सौभाग्य से वे अंधे नहीं है।

आपके पास जो कुछ भी है उसके लिए प्रति ईश्वर को धन्यवाद दीजिए। रचनात्मक बनें। कुछ अलग तरह से और सकारात्मक सोचें। जब जिन्दगी रोने के सौ अवसर उपलब्ध कराती है, तो हंसने के हजार मौके भी देती है। जीवन एक रहस्य है सुलझाने का, उसे समस्या की तरह लेकर समाधान खोलने में न जुटे रहें।

– दैनिक भास्कर से साभार

Your Space

About a hundred years ago, a man looked at the morning newspaper and to his surprise and horror, saw his name in the obituary column. The newspaper had reported his death by mistake. His first response was shock. When he regained his composure, his next thought was to find out what people had said about him. The obituary read "Dynamite King Dies" and "He was the merchant of death". This man was the inventor of dynamite and when he read the words "merchant of death," he asked himself, "Is this how I am going to be remembered?" He decided this was not the way he wanted to be remembered. From that day onward, he started working towards peace. He, the dynamite king, was Alfred Nobel and he is remembered today for the great Nobel prizes. Now it is our decision, how we want ourselves to be remembered as.......?

Compiled by,
Ankita Jain, Ashoknagar

जिन्दगी

जिन्दगी,
तुम अनंत.......
अर्थों से भरे,
शब्दों से परे हो,
असीमित, विस्तृत,
सीमाओं से परे हो,
गहराइयों का समुन्दर हो,
रहस्यों का रहस्य हो,
तुम समझ से परे हो,
हर प्राणी जीता है तुम्हे,
पर नही जान पाया कभी,
तुम्हारे,
वास्तविक स्वरूप को....
यथार्थ को........
''जिन्दगी के सत्य को''
''जिन्दगी की सत्ता को''
''जिन्दगी के अर्थ को'',
बस,
इतना ही जांना कि,
जिन्दगी तुम अनंत हो...........

–नितिन जैन, चिरगांव

ईश्वर को धन्यवाद दीजिए

एक बिल्डिंग की सीढ़ियों पर एक अंधा लड़का अपने पैरों के पास हैट रखकर बैठा था। उसके हाथ में साईन बोर्ड था, जिस पर लिखा था – ''मैं अंधा हूँ, कृपया मेरी मदद करें।'' इसके बावजूद उसकी हैट में चंद सिक्के ही पड़े थे। इसी बीच एक आदमी वहां से गुजरा, उसने लड़के के हैट में कुछ सिक्के डाले और उससे बोला कि मैं तुम्हार साईन बोर्ड बदल रहा हूँ। उसके जाने के बाद देखते ही देखते लड़के के हैट में ढेर सारे सिक्के आ गिरे। लोग अब बढ़–चढ़ कर उसे सिक्के दे रहे थे। दोपहर को वही शख्स फिर उसे देखने आया तो पैरों की आहट पहचान कर लड़के ने पूछा, ''आप वही हैं न जिन्होंने मेरा साईन बोर्ड बदला था ? आपने उसमें क्या लिखा था ?''

अंधे लडके के इस प्रश्न पर वह व्यक्ति बोला, ''मैंने उस पर सिर्फ सच ही लिखा था। बस मैंने अपने कहने का अंदाज कुछ शब्दों की मदद से बदल दिया था। मैंने उस पर लिखा था – ''आज का दिन बहुत अच्छा है, लेकिन मैं उसे देख नहीं सकता।'' क्या आपको भी लगता है कि पहले और दूसरे साईन बोर्ड में एक ही बात की गई थी ? बिल्कुल, दोनों ही बातें अन्य लोगों को उस अंधे लड़के के बारे में बता उसकी मदद को कह रहे थे, लेकिन पहले साईन बोर्ड में वही बात साधारण ढंग से कही गई थी, जबकि दूसरे में लोगों को यह समझाने की कोशिश की गई थी कि सौभाग्य से वे अंधे नहीं है।

आपके पास जो कुछ भी है उसके लिए प्रति ईश्वर को धन्यवाद दीजिए। रचनात्मक बनें। कुछ अलग़ तरह से और सकारात्मक सोचें। जब जिन्दगी रोने के सौ अवसर उपलब्ध कराती है, तो हंसने के हजार मौके भी देती है। जीवन एक रहस्य है सुलझाने का, उसे समस्या की तरह लेकर समाधान खोलने में न जुटे रहें।

– दैनिक भास्कर से साभार

Letters

Chirping Sparrow, as the name of this news letter suggests, flies to us every quarter, talking about our religion, telling us nice & encouraging stories which have good morals in them. Most importantly it has words of Muni Shri. Although we are far away from MuniShri, through C.S. we get to spend few beautiful moments with him through sections such as Prashanmach, Stories and poems.

- Shuchi Jain, Banglore

हमारा परिवार विगत तीन वर्षों से Chriping Sparrow प्राप्त कर रहा है। इस न्यूज लेटर से धार्मिक व अन्य समाचार मिलते रहते हैं। जो हमें बहुत प्रेरणा देते हैं। यह मुझे अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने में मार्गदर्शक भी है। मुनिश्री के द्वारा दिये गये प्रश्नों के उत्तर सटीक और आकर्षक होते हैं। मुझे इससे काफी मार्गदर्शन मिला है। कृपया इसे जारी रखिएगा।

–सौरभ जैन, भोपाल

वास्तव में आज भगवान महावीर की अंहिसा लुप्त होती जा रही हैं। आज बाजार मे अनेक सौन्दर्य उत्पाद जो कि हिंसक है, का उपयोग हो रहा है। आये दिन लोग एक दूसरे का बुरा करते रहते हैं। जान से मारने तक से नहीं चूकते हैं। अनुकूल परिस्थिति हो या प्रतिकूल अंहिसा का विचार उनके मन में नहीं रहता है। इसके लिए आज हम सबको जागरूक होकर भगवान महावीर की अंहिसा को प्रसारित करने की जरूरत है। अगर सब उनके सिद्धान्त – "जियो और जीने दो" पर चलें तो सम्पूर्ण विश्व में शांति कायम हो जाएगी। Chriping Sparrow के माध्यम से हमे बहुत अच्छी अच्छी जानकारियां, अनेक उलझे प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं। हम इसके प्रति आभारी है। हमारा पूरा परिवार व मोहल्ला सब इसे बहुत अच्छे से पढ़ते हैं।

–अंजली जैन, सागर

जब भी Chriping Sparrow आती है मुझे Young Jaina Award के वो दिन याद आते हैं। वो पल जब मैने मुनि श्री के हाथो से अवार्ड लिया था। मैं फिर उमंग से भर जाती हूँ कि फिर से ऐसा कुछ करो कि मुनि श्री अपने आर्शीवाद से मुझे सम्मानित करें। मुनि श्री के प्रति मेरी जो भावना है वो उनके प्रति ऐसी श्रद्धा का एहसास है जिसे मै शब्दों नहीं बयान नहीं कर सकता हूँ। जब भी Chriping Sparrow आती है, तो मैं कहीं भी हूँ मुझे मन से मुनि श्री के दर्शन करा देती है। रोज भगवान के दर्शन करते वक्त की प्रार्थना में उनका स्वास्थ्य जल्दी से पूर्ण रूप से ठीक हो ऐसी मेरी भावना अन्तर्निहित रहती है। मुझे बहुत खुशी है कि इस पत्रिका के द्वारा मैं मैत्री समूह में सम्मिलित हूँ। इसका हरेक शब्द उपयोगी है, पर मुझे विशेष तौर से आपका प्रश्न उत्तर कॉलम अच्छा लगता है। मुझे लगता है कि ये मेरे मन में उठने वाले ही प्रश्न हैं जिनके उत्तर मुझे स्वत : ही मिल जाते हैं।

–सोनम सँठिया, इंदौर

महत्वपूर्ण चिट्ठी

दूसरे के लिए सोच

एक दिन एक दस साल का बच्चा एक आइसक्रीम पार्लर पर गया। टेबल पर बैठकर उसने पूछा, "आइसक्रीम का सबसे छोटा वाला कोन (cone) कितने का है?" वेटर ने कहा,
"पचहत्तर सेंट्स।" बच्चे ने सिक्के गिने तो देखा उसके पास ठीक पचहत्तर सेंट्स ही हैं, फिर उसने पूछा कि छोटी कप वाली आइसक्रीम कितने की है। वेटर ने बेसब्री से कहा, "पैंसठ सेंट्स, लेना हो तो लो, क्या भाव–ताव करते हो ?"। लड़का बोला "अच्छा, मुझे छोटा कप ही दे दो।" उसने आइसक्रीम ली, पैसे दिए और चला गया। जब वेटर खाली प्लेट उठाने के लिए आया तो उसने जो कुछ देखा, वह बात उसके मन को छू गई। वहाँ दस सेंट्स 'टिप' के रखे हुए थे।

उस छोटे से बच्चे ने उस वेटर का ख्याल रखा। चाहता तो वह पूरे 75 सेंट्स की कोन वाली आइसक्रीम खरीद सकता था पर उसने संवेदनशीलता दिखाई थी, उसने खुद से पहले दूसरे के बारे में सोचा।